॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद॥

॥ अथ पञ्चदशं काण्डम्॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 5

सूक्त २ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 8

सूक्त ३ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 15

सूक्त ४ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 19

सूक्त ५ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 23

सूक्त ६ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 28

सूक्त ७ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 33

सूक्त ८ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 35

सूक्त ९ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 36

सूक्त १० – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 37

सूक्त ११ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 40

सूक्त १२ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 44

सूक्त १३ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 47

सूक्त १४ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 50

सूक्त १५ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 56

सूक्त १६ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 59

सूक्त १७ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त 61

सूक्त १८ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त..... 64

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

समूहों का हित करने वाले समूह पति का वर्णन

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्॥१५,१.१॥

व्रात्य समूहपति ने व्रात्य स्थिति को प्राप्त करते ही प्रज्ञापालक ब्रह्मा को श्रेष्ठ मार्गदर्शन प्रदान किया ॥१५,१.१॥

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्न् अपश्यत्तत्प्राजनयत्॥१५,१.२॥

उस प्रजापति ब्रह्मा ने अपने में तेजस्वी आत्मा का दर्शन किया, तत्पश्चात् सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन किया ॥१५,१.२॥

तदेकमभवत्तल्ललाममभवत्तन्
महदभवत्तज्ज्येष्ठमभवत्तद्ब्रह्माभवत्तत्तपोऽभवत्तत्सत्यमभव
त्तेन प्राजायत ॥१५,१.३॥

वहीं प्रजापतिदेव महान्, विलक्षण, ज्येष्ठ (विशाल), ब्रह्मा (सृष्टि रचयिता), तपः शक्ति से युक्त और सत्यनिष्ठ बनें ।

मात्र उसी एक के द्वारा इस (व्रात्य) को उत्पन्न किया गया ॥१५,१.३॥

सोऽवर्धत स महान् अभवत्स महादेवोऽभवत्॥१५,१.४॥

वही प्रजापति वृद्धि को प्राप्त करके महान् बने और महादेव (महान् देवत्व के गुणों से सुशोभित) हुए ॥१५,१.४॥

स देवानामीशां पर्यैत्स ईशानोऽभवत्॥१५,१.५॥

वहीं देवों के स्वामी और ईशान अथवा ईश्वरत्व के पद से अलंकृत हुए ॥१५,१.५॥

स एकव्रात्योऽभवत्स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥१५,१.६॥

वहीं व्रात्यसमूह के एकमात्र अधिपति हैं, उनके द्वारा जिस धनुष का स्पर्श किया गया (धारण किया गया), वहीं इन्द्रधनुष के नाम से कहा गया ॥१५,१.६॥

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥१५,१.७॥

इसकी पीठ लाल वर्ण और उदर (मध्य भाग) नील वर्ण से सुशोभित है ॥१५,१.७॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥१५.१.८॥

नील वर्ण के भाग से यह अप्रिय अर्थात् दुष्ट शत्रु को घेरता है और लाल वर्ण के पृष्ठभाग से, द्वेषभावना से ग्रसित शत्रुओं को विदीर्ण करता है, ऐसा तत्त्वज्ञानियों का कथन है ॥१५.१.८॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त २ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन तथा शरीर रूपी रथ का वर्णन

स उदतिष्ठत्स प्राचीं दिशमनु व्यचलत्।
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ।
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति।
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।
तस्य प्राच्यां दिशि श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ।
भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथं मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरौ ।
ऐनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥१५,२.१॥

वह व्रात्य) उन्नत हुआ और प्रगति मार्ग की प्रतीक पूर्व दिशा की ओर चल दिया । उसके पीछे बृहत्साम, रथन्तर साम, आदित्यगण तथा सभी दैवी शक्तियाँ चल पड़ीं । जो मनुष्य

ज्ञानवान् व्रात्य (व्रतचारी) को अपमानित करते हैं, वे बृहत् , रथन्तर आदित्यगण तथा समस्त देवताओं के प्रति ही अवज्ञा- अवहेलना करते हैं । जो उस (व्रात्य) का) आदर करते हैं। वे बृहत् , रथन्तर आदित्यदेवों तथा समस्त देवशक्तियों की प्रिय पूर्व दिशा में अपना प्रियधाम बनाते हैं । उसके लिए श्रद्धा पुंश्चली (स्त्री रूप) मित्र (सूर्य मागधरूप स्तुति करने योग्य), विज्ञान लज्जा निवारक वस्त्र रूप , दिन शिरोवस्त्र (पगड़ी) रूप, रात्रि केश (बालों के) समान, सूर्य किरणें कर्णकुण्डल (आभूषण रूप) तथाआकाशीय तारागण मणिमुक्ताओं के समान होते हैं । अतीत (भूत) और भविष्यत्काल ये इसके परिष्कन्द (संरक्षक) होते हैं तथा मन जीवन-संग्राम रथ के समान होता है । मातरिश्वा (श्वास) और पवमान (उच्छ्वास) ये दो इसके रथ के घोड़े, प्राणवायु सारथि तथा रेष्मा (वायु), उसका चाबुकरूप होता है । जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति-यशस्विता अग्रसर (बढ़ती) होती हैं ॥१५,२.१॥

स उदतिष्ठत्स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत्। तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ।
यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ।
यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।

तस्य दक्षिणायां दिश्युषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः । अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथं मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरौ ।
ऐनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥१५,२.२॥

वही व्रात्य उठकर (उन्नतिशील होकर) दक्षिण दिशा की ओर अनुकूलतापूर्ण स्थिति में विचरण करता है । उसके पीछे यज्ञायज्ञीय, साम, वामदेव्य, यज्ञ (यज्ञीय सत्कर्म), यजमान (साधक) और पशुधन (गवादिपशु भी अनुकूल होते हुए अर्थात् लाभप्रद होते हुए गमन करते हैं । जो मनुष्य ज्ञान सम्पन्न व्रात्य की अवमानना करते हैं, वे यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम, यज्ञीय सत्कर्मों, यजमान साधकों तथा पशुओं की ही अवज्ञा करते हैं । (जो मनुष्य उस व्रात्य का आदर करते हैं। वे दक्षिण दिशा में यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम, यज्ञादिकर्मों, यजमान साधकों तथा गौं आदि पशुओं के प्रियधाम बनते हैं । उसके निमित्त उषा पुंश्चली (स्त्रीरूप), मंत्र प्रशंसा करने वाले (मागधी, विशिष्ट ज्ञान (लज्जा निवारक) वस्वरूप, दिन (सिर के वस्त्र के समान) पगड़ीरूप, रात्रि (कृष्णवर्ण) बाल के समान, सूर्य किरणें कर्णकुण्डल (आभूषणो रूप तथा आकाशीय तारे मणि के समान होते हैं । अमावास्या और पूर्णिमा उसके

परिष्कन्द (संरक्षक) रूप होते हैं। मन उसका जीवन समर के रथ के समान होता है । मातरिश्वा (श्वास) और पवमान (उच्छ्वास) उसके जीवन रथ के घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप तथा रेष्मा (वायु), उसका चाबुकरूप होता है। जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति अग्रसर होती हैं ॥१५,२.२॥

स उदतिष्ठत्स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत्।
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ।
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ।
वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।
तस्य प्रतीच्यां दिशीरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ।
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथं मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरौ ।
ऐनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥१५,२.३॥

वही व्रात्य उठकर (उव्रत होकर) पश्चिम दिशा की ओर अनुकूलतापूर्ण स्थिति में विचरण करता है । ऐसे में वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजा वरुण ये सभी उसके लिए

अनुकूलतापूर्वक गमन करते हैं । जो मनुष्य विद्वान् व्रात्य के प्रति निन्दा का भाव रखते हैं, वे परोक्षरूप में वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजावरुण की अवहेलना करते हैं । (इसके विपरीत जो उसके अनुकूल होकर रहते हैं। वे वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजावरुण के प्रियधाम बनते हैं । उसके निमित्त भूमि पुंश्चली (स्त्री रूप) , हास्य प्रशंसा करने वाला (मागध), विशिष्ट ज्ञान वस्त्ररूप, दिन शिरोवस्वरूप, रात्रि केश (बाल रूप, किरणें कर्णकुण्डलरूप तथा आकाशीय तारागण मणियों के समान होते हैं । रात्रि और दिन उसके परिष्कन्द (संरक्षक) रूप है, मन उसके जीवन- समर के रथतुल्य है । मातरिश्वा (श्वास और पवमान (उच्छ्वासी वायु उसके रथ के दो घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप तथा रेष्मा(वायु) उसके चाबुक के समान हैं। जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति उसी स्तर से अग्रसर होती है ॥१५,२.३॥

स उदतिष्ठत्स उदीचीं दिशमनु व्यचलत्।
तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ।
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ।
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।

तस्योदीच्यां दिशि विद्युत्पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः । श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथं मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरौ ।
ऐनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥१५,२.४॥

वही व्रात्य उठकर (उन्नत होक) उत्तर दिशा की ओर अनुकूल रीति से चलता है । श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम भी ऐसे व्रात्य के अनुगामी होकर चलते हैं । जो मनुष्य ऐसे ज्ञानसम्पन्न व्रात्य की निन्दा करते हैं, वे श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम को ही परोक्ष रूप में अपमानित करते हैं । (परन्तु इसके विपरीत जो उसे आदर- सम्मान देते हैं। वे उत्तर दिशा में श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम के ही प्रियधाम बनते हैं । उसके लिए विद्युत् स्त्रीरूप, गरजने वाले मेघमण्डल प्रशंसक, विज्ञान वस्त्ररूप, दिन (शिरोवस्त्र) पगड़ीरूप, रात्रि का अँधेरा केशरूप, सूर्यकिरणे कर्णकुण्डल (आभूषणो रूप तथा आकाश के तारे मणियों के समान होते हैं । श्रुत (सुना हुआ ज्ञान) और विश्रुत (विज्ञान) ये उसके परिष्कन्द (संरक्षक) रूप होते हैं तथा मन उसका (जीवन समर का) रथरूप है । मातरिश्वा (श्वास), पवमान (उच्छ्वास) वायु उसके जीवन रथ के दो घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप और

रेष्मा (वायु) उसके चाबुक के समान होते हैं । ऐसी योग्यता की वृद्धि करने वाले व्रात्य की कीर्ति और यशस्विता उसी स्तर से प्रवृद्ध होती हैं ॥१५,२.४॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त ३ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन, आसंदी और बैठने की चौकी, ऋग्वेद के मंत्र और यजुर्वेद के मंत्र तथा आसंदी बुनने के तंतु

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत्तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥१५,३.१॥

व्रात्य एक वर्ष पर्यन्त खड़ा रहा, ऐसी स्थिति में देवशक्तियों ने उससे कहा कि हे व्रात्य ! आप किस उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर तपश्चर्यारत हैं ॥१५,३.१॥

सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥१५,३.२॥

व्रात्य ने कहा कि आप हमारे निमित्त चौकी (बैठने का आसन) प्रदान करें ॥१५,३.२॥

तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥१५,३.३॥

तब देवशक्तियों ने व्रात्य के निमित्त बैठने के लिए चौकी की रचना की ॥१५,३.३॥

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥१५,३.४॥

उस चौकी के दो पाये ग्रीष्म- वसन्त तथा दो पाये शरद-वर्षा ऋतुरूप हुए ॥१५,३.४॥

बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥१५,३.५॥

दो बाजू के फलक (अनूच्या बृहत् और रथन्तर साम तथा दो तिरछे फलक (तिरच्य) यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम कहलाए ॥१५,३.५॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥१५,३.६॥

ऋग्वेद मंत्र लम्बाई (प्राञ्च) के तन्तु हुए तथा यजुर्वेद मंत्र तिरछे (तिर्यक्) तन्तु कहलाए ॥१५,३.६॥

वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥१५,३.७॥

वेद ज्ञान उस व्रात्य का शयन बिछौना तथा ब्रह्म विद्या उसका ओढ़ने का ऊपरी वस्त्र था ॥१५,३.७॥

सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥१५,३.८॥

सामवेदीय ज्ञान उसका गद्दा तथा उद्गीथ उसका तकिया था ॥१५,३.८॥

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत्॥१५,३.९॥

ऐसी ज्ञानरूप चारपाई (चौकी) पर व्रात्य ने आरोहण किया ॥१५,३.९॥

तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्या विश्वानि भूतान्युपसदः ॥१५,३.१०॥

देवशक्तियाँ उसकी परिष्कन्द (संरक्षणकर्मी), सत्य संकल्प उसके सहायक तथा समस्त प्राणी उसके साथ बैठने वाले हुए ॥१५,३.१०॥

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥१५,३.११॥

जो तत्त्वदर्शी हैं, वे सभी प्राणी उसके (व्रात्य के साथ बैठने के योग्य होते हैं ॥१५.३.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त ४ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन तथा ऋतुओं के रक्षक

तस्मै प्राच्या दिशः
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ।
वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१५,४.१॥

उस (व्रात्यों के लिए देवसमूह ने पूर्व दिशा की ओर से वसन्त ऋतु के दो महीनों को संरक्षक नियुक्त किया तथा बृहत् और रथन्तर साम को उस व्रात्य का अनुष्ठाता (सेवक) बनाया ॥ जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) इस प्रकार से जानकारी रखते हैं, उनके पूर्व दिशा से वसन्त ऋतु के दो महीने संरक्षणकर्ता होते हैं तथा बृहत् और रथन्तर साम उसके लिए अनुकूलतापूर्ण बनते हैं ॥१५,४.१॥

तस्मै दक्षिणाया दिशः ।

ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ।
ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१५,४.२॥

देवसमूह ने उस (व्रात्य) के लिए दक्षिण दिशा से ग्रीष्म ऋतु के दो महीनों को संरक्षक रूप में नियुक्त किया। यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम उस व्रात्य के अनुष्ठाता बनाये गये ॥ जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) ऐसा ज्ञान रखते हैं, उनके दक्षिण दिशा से ग्रीष्म ऋतु के दो महीने, संरक्षणकर्ता होते हैं । और यज्ञायज्ञीय तथा वामदेव्य साम उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥१५,४.२॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ।
वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ।
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१५,४.३॥

देवशक्तियों ने उस (व्रात्य समूहों के लिए पश्चिम दिशा से वर्षाऋतु के दो महीनों को संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया। वैरूप तथा वैराजसाम को अनुष्ठाता (अनुगामी) बनाया ॥ जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार का ज्ञान रखते

हैं, उनके पश्चिम दिशा से वर्षा ऋतु के दो महीने संरक्षणकर्ता होते हैं। वैरूप और वैराजसाम दोनों उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥१५,४.३॥

तस्मा उदीच्या दिशः ।
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वं छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ।
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं
चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१५,४.४॥

देवशक्ति समूह ने उस (व्रात्य समूह) के लिए उत्तर दिशा से शरद् ऋतु के लिए दो महीनों के संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया। श्यैत और नौधस को उसका सेवक बनाया ॥ जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार की जानकारी रखते हैं, उत्तर दिशा से शरद ऋतु के दो महीने उनका संरक्षण करते हैं । श्यैत और नौधस उनका अनुसरण करते हैं ॥१५,४.४॥

तस्मै ध्रुवाया दिशः ।
हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ।
हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु
तिष्ठतो य एवं वेद ॥१५,४.५॥

उसके (व्रात्य समूह) लिए देवशक्तियों द्वारा ध्रुव दिशा से हेमन्त ऋतु के दो महीनों को संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया गया। भूमि और अग्निदेव को अनुष्ठाता बनाया गया ॥ जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार का ज्ञान रखते हैं, उनकी सुरक्षा ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त ऋतु के दो मास करते हैं। भूमि और अग्निदेव भी उनके अनुगामी बनते हैं ॥१५,४.५॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ।
शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ।
शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु
तिष्ठतो य एवं वेद ॥१५,४.६॥

उस(व्रात्य समूह) के निमित्त देवताओं ने ऊर्ध्व दिशा की ओर से शिशिर ऋतु के दो महीनों को संरक्षण हेतु नियुक्त किया। आदित्यदेव (सूर्य) और द्युलोक को अनुष्ठाता (अनुपालनकर्ता) बनाया ॥ जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) ऐसी जानकारी रखते हैं, उनका संरक्षण ऊर्ध्व दिशा से शिशिर ऋतु के दो मास करते हैं । सूर्य और द्युलोक भी उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥१५,४.६॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त ५ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति और ओषधियों तथाअ साम, यज, और ब्रह्म का वर्णन

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद्भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्। भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानो नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१५,५.१॥

उस (व्रात्य) के निमित्त देवताओं ने पूर्व दिशा के कोण से बाण का सन्धान करने वाले (धनुर्धारी) भवदेव को अनुष्ठाता बनाया ॥ जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) ऐसा ज्ञान रखते हैं, धनुर्धारी भव पूर्व दिशा के कोण से उनके अनुकूल होकर रहते हैं और भव, शर्व तथा ईशान भी उनका घात नहीं करते । उनके गाय आदि पशुओं और सामान्य श्रेणी के बन्धु बान्धवों को रुद्रदेव हिंसित नहीं करते ॥१५,५.१॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ।

शर्व एनमिश्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानो नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१५,५.२॥

उस (व्रात्य) के निमित्त देवशक्तियों द्वारा दक्षिण दिशा के कोने से बाण चलाने वाले (धनुर्धारी) शर्व को अनुष्ठाता बनाया गया ॥ जो ऐसा जानते हैं, उनके लिए धनुर्धारी शर्व दक्षिण दिशा के कोने से अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान भी इसे हिंसित नहीं करते । रुद्रदेव उनके गौ, आदि पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं को नहीं मारते ॥१५,५.२॥

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात्पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ।
पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानो नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१५,५.३॥

उसके निमित्त देवशक्तियों ने पश्चिम दिशा के कोने से बाण चलाने वाले पशुपति को अनुष्ठाता नियुक्त किया॥ जो इस तत्त्व के ज्ञाता हैं, उनके निमित्त बाण सन्धानकर्ता पशुपति दक्षिण दिशा के कोने से अनुकूलता पूर्ण होकर रहते हैं । भव, शर्व तथा ईशान भी उन्हें हिंसित नहीं करते ॥१५,५.३॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ।
उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानो नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१५,५.४॥

उनके निमित्त देवसमूह ने उत्तर दिशा के कोने से उग्रदेव को धनुर्धारी अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ जिन्हें ऐसा ज्ञान है, धनुर्धारी उग्रदेव उत्तर दिशा के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान भी उन्हें हिंसित नहीं करते औन ने उनके पशुओं तथा समवयस्क बांधवों को विनष्ट करते हैं ॥१५,५.४॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद्रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ।
रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानो नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१५,५.५॥

उनके निमित्त देवसमूह ने ध्रुव दिशा के कोण से रुद्रदेव को धनुर्धारीं अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ जो इस तथ्य के ज्ञाता हैं, अनुष्ठाता रुद्रदेव उनके हितकारी होकर रहते हैं

। भव, शर्व तथा ईशान उन पर घात नहीं करते और उनके पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं को भी ये देव विनष्ट नहीं करते ॥१५,५.५॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान् महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ।
महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानो नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१५,५.६॥

उनके निमित्त देवों ने ऊर्ध्व दिशा के कोने से धनुर्धारी महादेव को अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ जो इसे जानते हैं, धनुर्धारी महादेव ऊर्ध्व दिशा के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान भी इनके लिए घातक नहीं होते और इनके पशुओं तथा समवयस्कों के लिए भी संहारक नहीं होते ॥१५,५.६॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ।
ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानो नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१५,५.७॥

उनके निमित्त देवशक्तियों द्वारा समस्त दिशाओं के कोने से बाण सन्धानकर्ता ईशान को अनुष्ठाता बनाया ॥ जो इस तथ्य के ज्ञाता हैं, धनुर्धारी ईशान सभी दिशाओं के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान उनका संहार नहीं करते। उनके पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं का भी वे विनाश नहीं करते ॥१५,५.७॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त ६ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

भव अर्थात महादेव का वर्णन तथा रुद्र ध्रुव दिशा के रक्षक

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत्।
तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ।
भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.१॥

उस (व्रात्य) ने ध्रुव दिशा की ओर प्रस्थान किया । भूमि, अग्नि, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ छोटे और बड़े वृक्ष सभी उसके अनुकूल होकर चलें । जो इस सम्बन्ध में जानते हैं, वे भूमि, अग्नि, ओषधियों, वनस्पतियों तथा छोटे और बड़े वृक्षों के प्रियधाम बनते हैं ॥१५,६.१॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत्।
तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ।
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.२॥

उस (व्रात्य) ने ऊर्ध्व दिशा की ओर गमन किया । तब ऋत, सत्य, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र उसके अनुगामी होकर चल दिये । इस तथ्य के ज्ञाता सत्य, ऋत, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों के प्रियधाम बनते हैं ॥१५,६.२॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत्।
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ।
ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.३॥

अब (व्रात्य) के द्वारा उत्तम दिशा की ओर गमन किया गया । तब साम, ऋचाएँ, यजुः और ब्रह्म अर्थात् अथर्ववेद उसके अनुगामी होकर चले । जो इस तत्त्व को जानने वाले हैं, वे साम, ऋचाओं, यजुः और ब्रह्म (अथर्व) के प्रियधाम होते हैं ॥१५,६.३॥

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत्।
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ।
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.४॥

उस व्रात्य ने बृहती दिशा में प्रस्थान किया । उस समय इतिहास, पुराण और नाराशंसी गाथाएँ उसके अनुगामी होकर चले । जो इस बात के ज्ञाता हैं, वे इतिहास पुराण और नाराशंसी गाथाओं के प्रिय स्थान बनते हैं ॥१५,६.४॥

स परमां दिशमनु व्यचलत्।
तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ।
आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.५॥

उस (व्रात्य) ने परम दिशा की ओर गमन किया । तब आहवनीय, गार्हपत्य अग्नि, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान तथा पशु उसके अनुगामी होकर चल दिये । इस प्रकार जानने वाले, आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान तथा पशुओं के प्रियधाम बनते हैं ॥१५,६.५॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत्।
तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् । ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.६॥

उस व्रात्य ने अनादिष्ट दिशा की ओर प्रस्थान किया । तब ऋतु और तु पदार्थ, लोक और लोक सम्बन्धी पदार्थ, महीने, पक्ष, दिन-रात्रि उसके अनुगामी होकर चले । जो इस तत्त्व के ज्ञाता हैं, वे ऋतु- ऋतु सम्बन्धी, लोक- लोक सम्बन्धी पदार्थ, मास, पक्ष तथा दिन और रात्रि के प्रिय धाम बनते हैं ॥१५,६.६॥

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत्ततो नावर्त्स्यन्न् अमन्यत ।
तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ।
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.७॥

उस (व्रात्य) ने अनावृत दिशा की ओर गमन किया और वहाँ से वापस न लौटने का मन में चिन्तन किया । तब उसके पीछे दिति, अदिति, इडा और इन्द्राणी ने गमन किया । जो ऐसा जानते हैं, वे दिति, अदिति, इडा और इन्द्राणी के प्रिय धाम बनते हैं ॥१५,६.७॥

स दिशोऽनु व्यचलत्तं विराडनु व्यचलत्सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ।
विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.८॥

उस (व्रात्य) ने सभी दिशाओं की ओर गमन किया, तब विराट् आदि समस्त देव उसके अनुकूल होकर पीछे-पीछे चले । इस प्रकार का ज्ञान रखने वाले, विराट् आदि देवसमूह तथा (अन्य) समस्त देवों के प्रिय धाम बनते हैं ॥१५,६.८॥

स सर्वान् अन्तर्देशान् अनु व्यचलत्।
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ।
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,६.९॥

वह व्रात्य सभी अन्तर्देशों (सभी दिशाओं के कोणों) में अनुकूल होकर चला । तब प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह भी उसके अनुगामी होकर चले । ऐसा जानने वाले, प्रजापति, परमेष्ठी पिता और पितामह के प्रियधाम बनते हैं ॥१५,६.९॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त ७ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन

स महिमा सद्बुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगछत्समुद्रोऽभवत्॥१५,७.१॥

वह विराट् व्रात्य समर्थ होकर तीव्रतापूर्वक पृथ्वी के अन्तिम छोर तक गया और समुद्र में परिवर्तित हो गया ॥१५,७.१॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥१५,७.२॥

प्रजापति, परमेष्ठी, पिता, पितामह, जल और श्रद्धा वृष्टिरूप होकर इसके अनुशासन में (अनुकूल रहने लगे॥ ॥१५,७.२॥

ऐनमापो गछन्त्यैनं श्रद्धा गछत्यैनं वर्षं गछति य एवं वेद ॥१५,७.३॥

जो व्रात्य के सम्बन्ध में इस प्रकार से ज्ञान रखते हैं, उन्हें जल, श्रद्धा और वृष्टि की प्राप्ति होती है ॥१५,७.३॥

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥१५,७.४॥

उनके चारों ओर श्रद्धा, यज्ञ, लोक, अन्न और अन्नादि खाद्य सामग्री अपनी सत्ता में उत्पन्न हुए ॥१५,७.४॥

ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥१५,७.५॥

जो व्रात्य के सम्बन्ध में ऐसा ज्ञान रखते हैं, उन्हें श्रद्धा, यज्ञ, लोक, अन्न और अन्न को ग्रहण करने की शक्ति भी प्राप्त होती है ॥१५,७.५॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त ८ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥१५,८.१॥

वह (व्रात्य) सबका रञ्जन करने वाला होकर राजा के पद से सुशोभित हुआ ॥१५,८.१॥

स विशः सबन्धून् अन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत्॥१५,८.२॥

तब प्रजाजन, बान्धवगण, अन्न तथा अन्न के पाचन की सामर्थ्य उसके अनुकूल रहने लगे ॥१५,८.२॥

विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,८.३॥

जो इस मर्म के ज्ञाता हैं, वे प्रजाजनों, बन्धु-बांधवों, अन्न और अन्न पाचन की सामर्थ्य के प्रियधाम बनते हैं ॥१५,८.३॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त ९ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन

स विशोऽनु व्यचलत्॥१५,९.१॥

वह (व्रात्य) प्रजाजनों के अनुकूल व्यवहार करने लगा ॥१५,९.१॥

तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥१५,९.२॥

तब सभा, समिति, सैन्यशक्ति तथा सुरा (तीक्ष्णौषधि रस) या धनकोश उसकी अनुकूलता में रहने लगे ॥१५,९.२॥

सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५,९.३॥

जो इस तथ्य के वेत्ता हैं, वे सभा, समिति, सैन्यशक्ति तथा तीक्ष्णौषधिरस (धन कोष) के प्रियधाम बनते हैं ॥१५,९.३॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १० – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

ज्ञानी व्रात्य का वर्णन, ब्रह्मबल और क्षात्रबल तथा आकाश और पृथ्वी का वर्णन

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहान् आगच्छेत्॥१५,१०.१॥

श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥१५,१०.२॥

ऐसे ज्ञाननिष्ठ व्रात्यजिस अधिपति-राजा के गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु प्रस्तुत हों, तो इसे अपना हितकारक मानकर राजा उसे सम्मानित करे, ऐसी क्रिया करने पर क्षात्रबल का क्षय नहीं होता तथा राष्ट्रीय गौरव को भी किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती ॥१५,१०.१-१५,१०.२॥

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥१५,१०.३॥

इसके बाद ज्ञान (ब्रह्मबल) और वीर्य (क्षाबलों की उत्पत्ति होती है, वे दोनों बल प्रश्न करते हैं कि हम किसमें प्रविष्ट होकर वास करें ? ॥१५,१०.३॥

बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रविशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥१५,१०.४॥

ब्रह्मज्ञान को बृहस्पतिदेव और पराक्रमशक्ति (क्षात्रबल) को इन्द्रदेव में नि:सन्देह प्रवेश करना चाहिए ॥१५,१०.४॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥१५,१०.५॥

तब ब्रह्मज्ञान में बृहस्पतिदेव और पराक्रम शक्ति ने इन्द्रदेव में प्रवेश किया ॥१५,१०.५॥

इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥१५,१०.६॥

निश्चित रूप से यह पृथ्वी ही बृहस्पतिदेव और द्युलोक ही इन्द्रदेव हैं ॥१५,१०.६॥

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥१५,१०.७॥

निश्चित रुप से यह अग्नि ही ब्रह्मशक्ति और आदित्य (सूर्य) ही पराक्रम (क्षात्र-शौर्य) शक्ति है ॥१५,१०.७॥

ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥१५,१०.८॥

यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥१५,१०.९॥

जो पृथ्वी को बृहस्पतिदेव तथा अग्नि को ब्रह्मस्वरूप जानते हैं, उन्हें ब्रह्मज्ञान तथा ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती हैं ॥१५,१०.८-१५,१०.९॥

ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥१५,१०.१०॥

य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥१५,१०.११॥

जो आदित्य को क्षेत्र (पराक्रम शक्ति) और द्युलोक को इन्द्रशक्ति के रूप में जानते हैं, उनके समीप इन्द्र की (इन्द्रियशक्ति) पराक्रम शक्ति आती है और वे इन्द्रियवान् (शौर्यवान्) हो जाते हैं ॥१५,१०.१०-१५,१०.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त ११ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य की स्तुति और वर्णन

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहान् आगछेत्॥१५,११.१॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद्व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥१५,११.२॥

जिसके घर में ऐसा ज्ञानी व्रात्य आतिथ्य सत्कार हेतु उपस्थित हो, तब गृहपति स्वयं उनसे पूछे कि हे व्रात्य ! आपका निवास कहाँ है? यह जल आपके निमित्त (प्रस्तुत है। हमारे घर के सदस्य आपको तृप्ति प्रदान करें। जो आपको रुचे वही हो, जैसी आपकी इच्छा हो वहीं बने, जैसा आपका निकाम (अभिलाषा) हो, वैसा ही हो ॥१५,११.१-१५,११.२॥

यदेनमाह व्रात्य क्वावात्सीरिति पथ एव तेन देवयानान् अव रुन्धे ॥१५,११.३॥

व्रात्य से यह पूछने पर कि आप कहाँ निवास करते हैं? देवयान पथ अपने (प्रश्नकर्ता के) अधीन हो जाता है अर्थात् देवयान मार्ग खुल जाता हैं ॥१५,११.३॥

यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्धे ॥१५,११.४॥

व्रात्य से यह कहने पर कि हे व्रात्य ! यह जल आपके लिए है, (स्वागतकर्ता को पर्याप्त जल मिलता है ॥१५,११.४॥

यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥१५,११.५॥

ये जो कहते हैं कि हे व्रात्य ! ये हमारे परिवारी स्वजन आपको सेवा शुश्रूषा द्वारा संतुष्ट करें, इस वचन से वे अपनी प्राण ऊर्जा को ही बढ़ाते हैं ॥१५,११.५॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्धे ॥१५,११.६॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! जो आपके लिए प्रीतिप्रद हो, वही हो, तो इस कथन से वे अपने स्नेहयुक्त पदार्थों को ही उपलब्ध करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं ॥१५,११.६॥

ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥१५,११.७॥

जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वे प्रीतियुक्त (पुरुष) को उपलब्ध करते हैं तथा अपने प्रिय के भी प्रिय हो जाते हैं ॥१५,११.७॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्धे ॥१५,११.८॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! जैसी आपकी कामनाएँ हैं, वैसा ही हो, तो इस कथन से वे अपनी श्रेष्ठ कामनाओं की पूर्ति के द्वार को ही खोलते हैं ॥१५,११.८॥

ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥१५,११.९॥

जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) जानते हैं, उन्हें सभी अभीष्ट फल (वश) उपलब्ध होते हैं तथा वे वशीभूत करने वालों को भी अपने वश में करने वाले होते हैं ॥१५,११.९॥

यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव तेनाव रुन्धे ॥१५,११.१०॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! आप अपनी अभिलाषाओं के अनुरूप उपलब्ध करें, तो इससे वे मानो अपने लिए अभिलाषाओं के द्वार को उद्घाटित करते (खोल देते) हैं ॥१५,११.१०॥

ऐनं निकामो गछति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥१५,११.११॥

व्रात्य की अभिलाषाओं की पूर्ति होती है, जो इस विषय के मर्मज्ञ हैं, उन्हें निश्चित रूप से अभीष्ट प्राप्त होते हैं ॥१५,११.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १२ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य की स्तुति और वर्णन तथा विद्वान व्रतधारी की आज्ञा से हवन

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहान् आगच्छेत्॥१५,१२.१॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद्व्रात्याति सृज होष्यामीति ॥१५,१२.२॥

अग्निहोत्र प्रारम्भ होने पर अग्नि प्रदीपन के समय यदि किसी अग्निहोत्री (याज्ञिक) के गृह पर ज्ञाननिष्ठ व्रात्य उपस्थित हों, तो ऐसी स्थिति में (याज्ञिक) स्वयं उसे आसन देकर कहे कि हे व्रात्य ! आप निर्देश दें, मैं यज्ञकर्म करने के लिए तत्पर होऊँगा ॥१५,१२.१-१५,१२.२॥

स चातिसृजेज्जुहुयान् न चातिसृजेन् न जुहुयात्॥१५,१२.३॥

यदि विद्वान् व्रात्य अनुमति प्रदान करें , तभी आहुतियाँ समर्पित करें, अनुमति न दें तो आहुतियाँ समर्पित न करें ॥१५,१२.३॥

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥१५,१२.४॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥१५,१२.५॥

यदि याज्ञिक विद्वान् व्रात्य के कथन के अनुसार आहुति प्रदान करता है, तो वह पितृयान मार्ग और देवयानमार्ग का ज्ञान उपलब्ध करता है ॥१५,१२.४-१५,१२.५॥

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥१५,१२.६॥

पर्यस्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥१५,१२.७॥

ऐसे अग्निहोत्री द्वारा प्रदत्त आहुतियाँ देवत्व संवर्धक शक्तियों को ही प्राप्त होती हैं । देवशक्तियों में इसकी किसी प्रकार का दोष नहीं माना जाता। इससे उसका आश्रयस्थल संसार में चतुर्दिक् सुरक्षित रहता है ॥१५,१२.६-१५,१२.७॥

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥१५,१२.८॥

न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥१५,१२.९॥

इसके विपरीत जो ज्ञानवान् व्रात्य के दिशा निर्देश न देने पर भी आहुतियाँ प्रदान करते हैं, वे इसके दोषस्वरूप पित्यान मार्ग और देवयान मार्ग दोनों के ही ज्ञान से वञ्चित रह जाते हैं ॥१५,१२.८-१५,१२.९॥

आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥१५,१२.१०॥

देवों के प्रति इस अपराध के साथ उसका यज्ञ भी निष्फल हो जाता है ॥१५,१२.१०॥

नास्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥१५,१२.११॥

जो विद्वान् व्रात्य के दिशा निर्देश के बिना यज्ञ कार्य करते हैं, उनका इस विश्व में किसी प्रकार का आधार (आश्रयों नहीं रहता ॥१५,१२.११॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १३ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य की स्तुति और वर्णन व्रात्य अतिथि के रूप में व्रात्य की स्तुति तथा वर्णन

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ।
ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तान् एव तेनाव रुन्धे ॥१५,१३.१॥

जिराके गृह में ऐसे ज्ञानवान् व्रात्य का एक रात्रि के लिए अतिथिरूप में वास रहता है। वह गृहस्थ इसके पुण्यफल से पृथ्वी के सभी पुण्यलोकों को जीत लेता है ॥१५,१३.१॥

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ।
येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तान् एव तेनाव रुन्धे ॥१५,१३.२॥

ऐसे ज्ञानी व्रात्य, जिसके गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु दूसरी रात्रि भी रुकते हैं, उसके फलस्वरूप वह गृहस्थ अन्तरिक्ष के पुण्यदायी लोकों को उपलब्ध करता है ॥१५,१३.२॥

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ।

ये दिवि पुण्या लोकास्तान् एव तेनाव रुन्धे ॥१५,१३.३॥

ऐसे ज्ञानसम्पन्न व्रात्य जिसके गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु तीसरी रात्रि तक ठहरते हैं, उसके पुण्य फल स्वरूप वह गृहस्थ द्युलोक के पुण्यप्रद लोकों को प्राप्त करता है ॥१५,१३.३॥

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ।
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तान् एव तेनाव रुन्धे ॥१५,१३.४॥

ऐसे ज्ञानवान् व्रात्य, जिसके घर में अतिथिक्रम में चतुर्थ रात्रि तक रुकते हैं, उससे उपलब्ध फल से वह गृहस्थ पुण्यात्माओं के पुनीत लोकों को प्राप्त करता है ॥१५,१३.४॥

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ।
य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तान् एव तेनाव रुन्धे ॥१५,१३.५॥

ऐसे विद्वान् व्रात्य जिसे सद्गृहस्थ के घर में अतिथिरूप में असंख्य रात्रियों तक निवास करते हैं, उसके फलस्वरूप वह गृहस्थ अपने लिए असंख्य पुण्यदायी लोकों को प्राप्त करता है ॥१५,१३.५॥

अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहान् आगच्छेत्॥१५,१३.६॥

कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत्॥१५,१३.७॥

जिसके गृह में व्रात्य गुणों से हीन तथा स्वयं को विद्वान् व्रात्य प्रदर्शित करने वाला अव्रात्य अतिथि रूप में आगमन करे , तो क्या उसे अपने निवास से भगा दें? नहीं उसका भी तिरस्कार न करें ॥१५,१३.६-१५,१३.७॥

अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात्॥१५,१३.८॥

सद्गृहस्थ कहे कि हम इस (व्रात्य अतिथि) देव के लिए जल की स्तुति प्रार्थना करते हैं । इस अतिथिदेव को गृह में निवास प्रदान करते हैं तथा देवस्वरूप समझकर इसे परोसते हैं ॥१५,१३.८॥

तस्यामेवास्य तद्देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥१५,१३.९॥

जो इस तत्त्वज्ञान का मर्मज्ञ है, उसी देवता में उस सद्गृहस्थ का अतिथि सत्कार रूप हवन होता है ॥१५,१३.९॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १४ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य की स्तुति तथा वर्णन

स यत्प्राचीं दिशमनु व्यचलन् मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यचलन् मनोऽन्नादं कृत्वा ।
मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.१॥

जब उसने पूर्वदिशा की ओर प्रस्थान किया, तब बलशाली होकर वायुदेव के अनुकूल चलते हुए, उसने अपने मन को अन्न भक्षण करने वाला बनाया । जो इस विषय का मर्मज्ञ है, वह अन्न भक्षण करने की मनोवृत्ति से अन्न सेवन करता है ॥१५,१४.१॥

स यद्दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद्बलमन्नादं कृत्वा ।
बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.२॥

जिस समय उसने दक्षिण दिशा में गमन किया, तब बल-सामर्थ्य को अन्नाद बनाकर और स्वयं को इन्द्र (पराक्रमशील) बनाते हुए वह गतिशील हुआ ॥ जो इस

विषय के ज्ञाता हैं, वह अन्नाद (अन्न भक्षक) बल- सामर्थ्य से अन्न का भक्षण करता है ॥१५,१४.२॥

स यत्प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद्वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ।
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.३॥

जब उसने पश्चिम दिशा की ओर गमन किया, उस समय जल को अन्नाद (अन्न सेवन करने वाला) बनाते हुए स्वयं राजा वरुण बनकर चला ॥ जो इस बात का मर्मज्ञ है, वह अन्न-भक्षक जल के साथ अन्न का उपभोग करता है ॥१५,१४.३॥

स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत्सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ।
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.४॥

जब उसने उत्तर दिशा की ओर गमन किया, तब सप्तर्षियों द्वारा प्रदत्त आहुतियों को अन्न भक्षक आहुति बनाकर राजा सोम की अनुकूलता में चला ॥ जो इस बात का ज्ञाता है, वह अन्नभक्षक आहुतियों द्वारा अन्न का उपभोग करता है ॥१५,१४.४॥

स यद्ध्रुवां दिशमनु व्यचलद्विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद्विराजमन्नादीं कृत्वा ।
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.५॥

जब वह ध्रुवदिशा की ओर प्रस्थान किया, तब विराट् पृथ्वीको अन्नमयी बनाकर विष्णुरूप बन संचरित हुआ॥ जो इस विषय का ज्ञाता है, वह अन्नमयी विराट् पृथ्वी द्वारा अन्न का सेवन करता है ॥१५,१४.५॥

स यत्पशून् अनु व्यचलद्रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ।
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.६॥

जब वह (व्रात्य) पशुओं (अज्ञानी प्राणियों) की ओर बढ़ा, तब ओषधियों को अन्न भक्षणरूप बनाते हुए स्वयं रुद्रदेव बनकर चला ॥ जो इस विषय का ज्ञाता है, वह अन्न भक्षक ओषधियों द्वारा अन्न का उपभोग करता है ॥१५,१४.६॥

स यत्पितॄन् अनु व्यचलद्यमो राजा भूत्वानुव्यचलत्स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ।
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.७॥

जब वह (व्रात्य) पितरजनों की ओर (उनके अनुकूल) चला, तो स्वधाकार को अन्नाद (अन्नभक्षक बनाते हुए स्वयं यम राजा बनकर अनुकूल रीति से चला ॥ जो इस तथ्य को जानता है, वह स्वधाकार द्वारा खाद्य सामग्री का सेवन करता है ॥१५,१४.७॥

स यन् मनुष्यान् अनु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत्स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा । स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.८॥

जब वह मनुष्यों की ओर चला, तौ स्वाहाकार को अन्न के सेवन योग्य बनाकर, स्वयं अग्निरूप होकर चला॥ जो इस मर्म का ज्ञाता है, वह स्वाहाकार के माध्यम से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥१५,१४.८॥

स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद्बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद्वषट्कारमन्नादं कृत्वा । वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.९॥

जब वह (व्रात्य) ऊर्ध्व दिशा की ओर गतिशील हुआ, तो वषट्कार को अन्न के सेवन योग्य बनाकर तथा स्वयं बृहस्पति बनकर अनुकूल रीति से चला ॥ जो इस तथ्य का

ज्ञाता है, वह वषट्कार के माध्यम से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥१५,१४.९॥

स यद्देवान् अनु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन् मन्युमन्नादं कृत्वा ।
मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.१०॥

जब वहीं (व्रात्य) देवशक्तियों की अनुकूलता में गतिशील हुआ, तो वहीं मन्यु (उत्साह) को सेवित अन्न बनाकर तथा स्वयं ईशान बनकर देवताओं के अनुशासन में गतिमान् हुआ ॥ जो इस तत्त्व ज्ञान का ज्ञाता है, वह उत्साह (मन्यु यज्ञ) से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥१५,१४.१०॥

स यत्प्रजा अनु व्यचलत्प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत्प्राणमन्नादं कृत्वा ।
प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.११॥

जब वही (व्रात्य) प्रजाजन अर्थात् जन- साधारण के लिए उपयोगी बनकर गतिशील हुआ, तो प्राणशक्ति को अन्न भक्षण योग्य बनाते हुए तथा स्वयं प्रजापतिरूप बनकर गतिमान् हुआ ॥ जो इस तत्त्व को ज्ञाता है, वह प्राणतत्त्व (प्राणशक्ति) खाद्य सामग्री का सेवन करता हैं ॥१५,१४.११॥

स यत्सर्वान् अन्तर्देशान् अनु व्यचलत्परमेष्ठी भूत्वानुव्यचलद्ब्रह्मान्नादं कृत्वा ।
ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१५,१४.१२॥

जब वही (व्रात्य) सभी अन्तर्देशों (दिशा के कोणों) के लिए उपयोगी बनकर चला, तो वही ब्रह्म को अन्न भक्षण योग्य बनाते हुए तथा स्वयं परमेष्ठी रूप बनकर विचरणशील हुआ ॥ जो इस तथ्य को इस प्रकार जानता है, वह ब्रह्म (ब्रह्मज्ञान) द्वारा अन्न (खाद्य सामग्री) का सेवन करता है ॥१५,१४.१२॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १५ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन

तस्य व्रात्यस्य ॥१५,१५.१॥

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥१५,१५.२॥

उस व्रात्य (समूहपति) के सप्त प्राण, सप्त अपान और सप्त व्यान हैं ॥१५,१५.१-१५,१५.२॥

योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥१५,१५.३॥

इस व्रात्य का जो सर्वप्रथम प्राण है, उसे ऊर्ध्व नामक अग्नि से सम्बोधित किया गया है ॥१५,१५.३॥

योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥१५,१५.४॥

इस व्रात्य का जो द्वितीय प्राण है, उसे प्रौढ़ नामक आदित्य कहा गया है ॥१५,१५.४॥

योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥१५,१५.५॥

इस व्रात्य का जो तीसरा प्राण है, उसे अभ्यूढ़ नामक चन्द्रमा कहा गया है ॥१५,१५.५॥

योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥१५,१५.६॥

इस व्रात्य के विभू नामक चौथे प्राण को पवमान वायु की संज्ञा दी गई है ॥१५,१५.६॥

योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥१५,१५.७॥

इसी व्रात्य के योनि नामक पाँचवें प्राण को अप् (जल) बताया गया है ॥१५,१५.७॥

योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥१५,१५.८॥

इस व्रात्य के प्रिय नामक छठे प्राण को पशु कहा गया है ॥१५,१५.८॥

योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥१५,१५.९॥

इस व्रात्य का अपरिचित नामक जो सातवाँ प्राण है, वह प्रजा नाम से सम्बोधित है ॥१५,१५.९॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १६ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन

योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥१५,१६.१॥

उस व्रात्य के प्रथम अपान को पौर्णमासी कहा गया है ॥१५,१६.१॥

योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ॥१५,१६.२॥

उस व्रात्य के दूसरे अपान को अष्टका कहा गया है ॥१५,१६.२॥

योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ॥१५,१६.३॥

उस व्रात्य के तृतीय अपान को अमावस्या कहा गया है ॥१५,१६.३॥

योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥१५,१६.४॥

उस व्रात्य के चौथे अपान को श्रद्धा कहा गया हैं ॥१५,१६.४॥

योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥१५,१६.५॥

उस व्रात्य का जो पाँचवाँ अपान है, वह दीक्षा नाम से जाना जाता है ॥१५,१६.५॥

योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥१५,१६.६॥

उस व्रात्य के छठे अपान को यज्ञ कहा गया है ॥१५,१६.६॥

योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥१५,१६.७॥

उस व्रात्य के सातवें अपान को दक्षिणा कहा गया है ॥१५,१६.७॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १७ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन

योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥१५,१७.१॥

उस व्रात्य के प्रथम व्यान को "भूमि" कहा गया है ॥१५,१७.१॥

योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥१५,१७.२॥

उस व्रात्य के द्वितीय व्यान को अन्तरिक्ष कहा गया है ॥१५,१७.२॥

योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥१५,१७.३॥

उस व्रात्य का तृतीय व्यान द्यौ संज्ञक है ॥१५,१७.३॥

योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥१५,१७.४॥

उस व्रात्य का चतुर्थ व्यान नक्षत्र संज्ञक है ॥१५,१७.४॥

योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥१५,१७.५॥

उस व्रात्य के पञ्चम व्यान को ऋतुएँ कहा गया है ॥१५,१७.५॥

योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥१५,१७.६॥

उस व्रात्य के छठे प्राण को (आर्तव) ऋतुओं में प्रकट होने वाला पदार्थ कहा गया है ॥१५,१७.६॥

योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥१५,१७.७॥

उस व्रात्य के सातवें व्यान को संवत्सर कहा गया है ॥१५,१७.७॥

समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतद्दतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥१५,१७.८॥

देवशक्तियाँ उस व्रात्य के समान गुणों से युक्त अर्थ को ग्रहण करती हैं तथा संवत्सर और ऋतुएँ भी निश्चित रूप से उनका अनुसरण करती हैं ॥१५,१७.८॥

यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत्पौर्णमासीं च ॥१५,१७.९॥

अमावास्या और पूर्णिमा के समय जो भाव आदित्य (सूर्य) में प्रविष्ट होते हैं, वे इस व्रात्य के भाव ही होते हैं ॥१५,१७.९॥

एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥१५,१७.१०॥

उस व्रात्य और इन (उक्त सभी) भावों का एक अमरत्व है, ऐसा कहा गया है ॥१५,१७.१०॥

॥अथर्ववेद – पञ्चदशं काण्डम्॥

सूक्त १८ – अध्यात्म-प्रकरण सूक्त

व्रात्य का वर्णन

तस्य व्रात्यस्य ॥१५,१८.१॥

यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥१५,१८.२॥

उस व्रात्य का दक्षिण नेत्र सूर्यरूप तथा बायाँ नेत्र चन्द्ररूप है ॥१५,१८.१-१५,१८.२॥

योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥१५,१८.३॥

इसका दाहिना कान अग्निरूप और बायाँ कान पवमानरूप है ॥१५,१८.३॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥१५,१८.४॥

दिन-रात्रि उसकी नासिका, दिति और अदिति सिर के दोनों कपाल भाग तथा वर्ष उसका सिररूप है ॥१५,१८.४॥

अह्ना प्रत्यङ्व्रात्यो रात्र्या प्राङ्नमो व्रात्याय ॥१५,१८.५॥

दिन में पूर्व की ओर तथा रात्रि में पश्चिम की और व्रात्य को हमारा नमन है ॥१५,१८.५॥

॥इति पञ्चदशं काण्डम्॥